सम्पादकीय

संसद का दृश्य अखाड़े से कम नहीं लगता

शरद कटियार
सम्पादक

बिहार में वोटर लिस्ट रिवीजन पर संसद में गतिरोध जारी है जिससे संसद का कामकाज बाधित है। आज संसद का दृश्य सार्थक संवाद की बजाय किसी अखाड़े से कम नहीं लगता। बहस के स्थान पर बैनर, तख्तियां और नारों की गूंज सुनाई देती है।

विडंबना है कि जनप्रतिनिधि जिन मुद्दों को लेकर चुने जाते हैं, उन्हीं मुद्दों पर चर्चा की बजाय वे मेजें थपथपाने, वेल में उतरने और माइक बंद कराने में लगे हैं। संसद का हंगामा केवल दृश्य नहीं, बल्कि राजनीतिक पतन की ओर संकेत करता है। एक ओर सरकार संवाद से बच रही है तो दूसरी ओर विपक्ष दिखावटी विरोध में लिप्त हंगामे बरपा रहा है, इन त्रासद एवं विडंबनापूर्ण स्थितियों में देश की जनता के मुद्दे पीछे छूटे जा रहे हैं।

विपक्ष और सत्ता के बीच टकराव में बहस की बजाय बहिष्कार और गतिरोध हावी हो चुका है। मानसून सत्र की शुरु आत उम्मीदों से भरी थी, नये विधेयकों, जनहित की बहसों और लोकतांत्रिक विमर्शों की। लेकिन यह सत्र भी पुराने ढर्रे पर चल पड़ा, विरोध, स्थगन, नारेबाजी और हंगामे की भेंट चढ़ता लोकतंत्र। विपक्ष बिहार में चल रहे वोटर लिस्ट रिवीजन पर चर्चा चाहता है। इसमें ईवीएम की पारदर्शिता, मतदाता सूची में गड़बड़ी और चुनाव आयोग की निष्पक्षता जैसे गंभीर मुद्दे शामिल हैं। मणिपुर की स्थिति, बेरोजगारी, महंगाई, पेगासस जासूसी, किसानों की समस्याएं और हाल में आई बाढ़ एवं आपदा राहत जैसे मुद्दे भी विपक्ष के एजेंडे में हैं। लेकिन विपक्ष इन और ऐसे जरूरी मुद्दों पर चर्चा का माहौल बनाने की बजाय सरकार को घेरने की मानसिकता से ग्रस्त है। संसद की प्रासंगिकता तभी है, जब उसमें देश की सच्चाइयों की प्रतिध्वनि हो और विपक्ष इसमें सकारात्मक भूमिका निभाए।

संसद में गतिरोध के कारण दर्जनों विधेयक लंबित हैं, डेटा प्रोटेक्शन बिल, महिला आरक्षण बिल, वन नेशन वन इलेक्शन पर चर्चा, कृषि कानूनों में संशोधन, आदि। ये सब विधेयक केवल कानून नहीं हैं, बल्कि करोड़ों भारतीयों के जीवन से जुड़े ज्वलंत प्रश्न हैं। दुर्भाग्यवश, विपक्ष सार्थक बहस से भाग रहा है या बहस में अड़ंगा डाल रहा है। सत्ता पक्ष भी कोई बीच का रास्ता निकालता दिखाई नहीं दे रहा है। दोनों की रस्साकशी देश के लोकतांत्रिक स्वास्थ्य को कमजोर कर रही है। कोई पक्ष झुकने को तैयार नहीं। दोनों सदनों का कीमती वक्त हंगामे में जाया हो रहा है और यह कोई पहली बार नहीं हो रहा। पिछले वर्षों में इस तरह की गतिविधियां आम हो गई हैं। विपक्ष चाहता है कि सरकार एसआईआर पर चर्चा कराए लेकिन सरकार नियमों का हवाला देकर कह रही है कि चुनाव आयोग स्वायत्त संस्था है, और मामला सुप्रीम

डॉ. मयंक चतुर्वेदी
वरिष्ठ स्तम्भकार हैं

विदेश सचिव विक्रम मिस्री ने भी इसी संदर्भ में कहा कि जो देश पाकिस्तान को बार-बार बेलआउट दे रहे हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि केवल वित्तीय सहायता देकर उसके मूल संकट का समाधान संभव नहीं है, जब तक कि उसकी नीतिगत और सुरक्षा-संबंधी दिशा में मूलभूत परिवर्तन न हो। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने तो और भी कड़े शब्दों में कहा था कि आईएमएफ की यह सहायता आतंक के लिए अप्रत्यक्ष वित्तपोषण साबित हो सकती है और अंतरराष्ट्रीय समुदाय को इस जोखिम को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए। साथ ही वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने चिंता जताई थी कि फंड जारी होने के समय पाकिस्तान न केवल आर्थिक

पाकिस्तान की आर्थिक नाकामी फिर उजागर

विश्व को भारत की चेतावनी सही निकली

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की सात अरब डॉलर की विस्तारित फंड सुविधा (ईएफएफ) के तहत पाकिस्तान के लिए मंजूर पैकेज की दूसरी समीक्षा ने एक बार फिर उस सच्चाई को सामने रख दिया है, जिसे भारत लंबे समय से अंतरराष्ट्रीय मंचों पर रेखांकित करता आ रहा है कि पाकिस्तान की आर्थिक संरचना इतनी जर्जर और राजनीतिक एवं सैन्य हितों से बंधी हुई है कि कोई भी वित्तीय मदद वहां स्थायी सुधार का रूप नहीं ले पाएगी। बीते सात दशकों में यह बार-बार साबित हुआ है कि बेलआउट पैकेज उस देश के लिए स्थायी समाधान नहीं हैं, जहां नीतिगत स्थिरता की कमी हो और आर्थिक प्राथमिकताएं राजनीतिक और सैन्य हितों से संचालित हों।

भारत का यह कहना कि पाकिस्तान आईएमएफ फंड का इस्तेमाल सैन्य गतिविधियों और सीमापार आतंकवाद में कर सकता है, केवल राजनीतिक बयान नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित चेतावनी है। जब रक्षा बजट साल-दर-साल बढ़ रहा हो और शिक्षा-स्वास्थ्य पर खर्च घट रहा हो, तो यह साफ है कि विकास प्राथमिकता सूची में नीचे है। पाकिस्तान ने अब तक लगभग 25 बार (1958 से) आईएमएफ की सहायता ली है, जो दुनिया में किसी भी अन्य देश की तुलना में बहुत अधिक है। यह एक पैटर्न बन चुका है, बेलआउट, सुधार की घोषणा, फिर गिरावट। मई 2025 में जब आईएमएफ के बोर्ड की बैठक में पाकिस्तान को 2.3 बिलियन डॉलर की मंजूरी दी गई, तो भारत ने मतदान से दूर रहते हुए इस मदद पर आपत्ति जताई थी।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की बैठक में भारत के स्थायी प्रतिनिधि प. हरिश ने पाकिस्तान को आईएमएफ का बार-बार कर्ज लेने वाला देश बताकर उसकी आर्थिक नीति की स्थिरता पर सवाल उठाए, और पाकिस्तान की आर्थिक असफलताओं को आतंक तथा कट्टरता से जोड़कर पेश किया। वस?तुत= भारत ने जो पाकिस?तान को लेकर आईएमएफ को चेताया और पूरी दुनिया को उसका सच दिखाया था, वह आज एक बार फिर से सच साबित हुआ है। हालिया समीक्षा में पाकिस्तान पांच में से तीन लक्ष्यों को हासिल करने में नाकाम रहा, जो अपने आप में आईएमएफ की शर्तों और पाकिस्तान की नीतिगत प्रतिबद्धताओं के बीच की गहरी खाई को उजागर करता है। पाकिस्तानी वित्त मंत्रालय की 'फाइनेंशियल ऑपरेशंस समरी' इस असफलता की पुष्टि करती है।

यहां ध?यान आता है वह समय जब आईएमएफ की पिछली बैठक में भारत के प्रतिनिधि परमेश्वरन अय्यर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वैश्विक वित्तीय संस्थानों को अपनी प्रक्रियाओं में नैतिक मूल्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए, विशेषकर उन मामलों में जहाँ सहायता प्राप्त करने वाला देश सैन्य गतिविधियों और सीमा पार आतंकवाद में संलिप्त रहा हो, वहां किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता या ऋण को मंजूरी नहीं देनी चाहिए। भारत की चिंता केवल आर्थिक नहीं है; उसका मानना है कि पाकिस्तान को मिलने वाली वित्तीय मदद का एक हिस्सा अप्रत्यक्ष रूप से उसकी सैन्य क्षमताओं को मज़बूत करता है, जिससे आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है।

विदेश सचिव विक्रम मिस्री ने भी इसी संदर्भ में कहा कि जो देश पाकिस्तान को बार-बार बेलआउट दे रहे हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि केवल वित्तीय सहायता देकर उसके मूल संकट का समाधान संभव नहीं है, जब तक कि उसकी नीतिगत और सुरक्षा-संबंधी दिशा में मूलभूत परिवर्तन न हो। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने तो और भी कड़े शब्दों में कहा था कि आईएमएफ की यह सहायता आतंक के लिए अप्रत्यक्ष वित्तपोषण साबित हो सकती है और अंतरराष्ट्रीय समुदाय को इस जोखिम को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए। साथ ही वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने चिंता जताई थी कि फंड जारी होने के समय पाकिस्तान न केवल आर्थिक संकट से जूझ रहा था, बल्कि सीमा पार हमलों में भी सक्रिय था, जिससे उसकी सैन्य गतिविधियों को आर्थिक सहारा मिला।

वस्तुत= भारतीय आर्थिक विश्लेषकों ने भी इस विफलता को लेकर गंभीर टिप्पणियां की हैं। वरिष्ठ अर्थशास्त्री सुरजीत भल्ला का कहना है कि बेलआउट को सख्त निगरानी और ठोस सुधारों की शर्तों से जोड़ा जाना चाहिए, वरना यह केवल तात्कालिक राहत तक सीमित रह जाएगा। प्रिंसटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अशोका मोदी का तर्क है कि पाकिस्तान में सैन्य-राजनीतिक गठजोड़ सुधारों की राह में सबसे बड़ा रोड़ा है, और जब तक सेना का आर्थिक और राजनीतिक हस्तक्षेप खत्म नहीं होगा, तब तक कोई भी वित्तीय पैकेज वास्तविक परिवर्तन नहीं ला सकेगा। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स्टेफ़न डेरकॉन ने पाकिस्तान को ÷सीरियल बेलआउट क्लाइंट÷ बताते हुए कहा कि इसके पीछे राजनीतिक अस्थिरता और संरचनात्मक कमजोरी है।

पाकिस्तान की विफलताएं सिर्फ आर्थिक नहीं, नीतिगत, संस्थागत और संरचनात्मक हैं। आईएमएफ का 7 बिलियन डॉलर का पैकेज एक बार फिर तय करता है कि केवल फंड देना पर्याप्त नहीं; उस पर कार्रवाई, निगरानी और जवाबदेही भी होनी चाहिए। भारत की आपत्तियां (आईएमएफ के बोर्ड में अभाव, कृषि एवं रक्षा खर्च की प्राथमिकता, सेना का प्रभुत्व), भारतीय व अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों की टिप्पणियाँ और पाकिस्तान की वास्तविकता, ये सभी मिलकर एक संदेश देते हैं कि बेलआउट का असल स्थायित्व तभी सुनिश्चित होता है, जब सुधार नीति, राजनीतिक जवाबदेही और कैपिटिल इंटर्नल ज़रूरतों को साथ ले कर चलना हो।

भारत का मानना है कि अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को केवल आर्थिक आंकड़ों और तात्कालिक स्थिरता के आधार पर निर्णय नहीं लेना चाहिए। सुरक्षा, राजनीतिक स्थिरता, और सहायता का वास्तविक उपयोग जैसे पहलुओं को भी महत्व देना चाहिए। पाकिस्तान का मामला यह स्पष्ट करता है कि बिना जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित किए दिया गया बेलआउट केवल संकट को आगे खिसकाता है, समाप्त नहीं करता। यही कारण है कि भारत ने न केवल आईएमएफ बल्कि विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक जैसे अन्य संस्थानों को भी बार-बार चेताया है कि पाकिस्तान को दी जाने वाली किसी भी मदद को कड़े सुधारों और निगरानी के साथ जोड़ा जाए।

कुल मिलाकर आज यह कहना सही होगा कि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) द्वारा पाकिस्तान को दी गई 7 अरब डॉलर की बेलआउट सुविधा की दूसरी समीक्षा में तीन में से तीन प्रमुख आर्थिक लक्ष्यों में विफलता, संघीय राजस्व बोर्ड (एफबीआर) द्वारा 12.3 लाख करोड़ रुपये संग्रह लक्ष्य का अधूरा रह जाना, ताजिर दोस्त योजना के तहत 50 अरब रुपये जुटाने में विफलता और प्रांतीय सरकारों द्वारा 1.2 लाख करोड़ रुपये की बचत लक्ष्य का अधूरा रह जाना ने सिर्फ आर्थिक ही नहीं, बल्कि राजनीतिक मसलों को भी फिर से गर्म कर दिया है। इन लक्ष्यों की पूर्ति न हो पाने से पाकिस्तान की वित्तीय प्रबंधन क्षमता पर सवाल उठे हैं और भारत की वह पुरानी आपत्ति कि पाकिस्तान 'आईएमएफ फंड' का उपयोग सैन्य और आतंकवादी गतिविधियों में कर सकता है भी आज पुष्ट होती दिख रही है।

(लेखक, हिन्दुस्थान समाचार से संबद्ध हैं।)

सोहेला : संबलपुर के साहसी सपूतों का समावेशी स्मारक

गौरव अवस्थी
वरिष्ठ स्तम्भकार हैं

उन्हीं सत्याग्रही युवाओं में से चमरु परिडा ने न्यायाधीश बनकर अदालत का काम शुरू किया। जितेंद्र प्रधान अर्दली बन गया और पूर्णचंद्र प्रधान पेशकार। जज साहब ने आदेश दिया, आप स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। कृपया सभी याचिकाएं ब्रिटिश सरकार को नहीं, बल्कि महात्मा गांधी को लिखकर जमा करें। 1942 की यह घटना, भारतीय स्वाधीनता संग्राम की उज्वल मगर कम चर्चित घटना थी।

छत्तीसगढ़ के बॉर्डर पर ओड़िशा के अंतिम कस्बे सोहेला से गुजरते वक्त चौराहे के बायीं तरफ महात्मा गांधी और उनके पैदल सैनिकों की 11 मूर्तियां अचानक आकर्षित करती हैं। यह मूर्तियां पश्चिम ओड़िशा के क्रांतिकारियों की गाथा सुनने की जिज्ञासा पैदा करने लगती हैं। इसलिए कि ऐसी मूर्तियां तो देश की राजधानी दिल्ली में हैं। फिर इनका यहां क्या उद्देश्य? लेकिन उद्देश्य है। पश्चिम ओड़िशा के कोसल प्रांत में प्रथम स्वाधीनता संग्राम से लेकर स्वाधीनता संग्राम तक का इतिहास बड़ा है। पुराना है और जुझारू भी।

सन 1942 का अगस्त महीना था। महात्मा गांधी भारत छोड़ो आंदोलन का आगाज कर चुके थे। उनके आह्वान पर संबलपुर क्षेत्र के युवा भी मचल उठे। तत्कालीन संबलपुर (अब बरगढ़) जिले के एक छोटे से गांव पाणिमोरा के युवाओं की में हृदय में गांधीजी के सिद्धांत, आदर्श के साथ आजाद भारत का सपना पैदा हो चुका था। भारत छोड़ो आंदोलन का आह्वान सुनकर पाणिमोरा गांव के युवाओं ने ब्रिटिश सरकार की अदालतों को अहिंसक और शांतिपूर्वक ढंग से अपने कब्जे में कर लिया।

उन्हीं सत्याग्रही युवाओं में से चमरु परिडा ने %न्यायाधीश% बनकर अदालत का काम शुरू किया। जितेंद्र प्रधान %अर्दली% बन गया और पूर्णचंद्र प्रधान %पेशकार%। जज साहब ने आदेश दिया, ÷आप स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। कृपया सभी याचिकाएं ब्रिटिश सरकार को नहीं, बल्कि महात्मा गांधी को लिखकर जमा करें।÷ 1942 की यह घटना, भारतीय स्वाधीनता संग्राम की उज्वल मगर कम चर्चित घटना थी। एक और %पैदल सैनिक% थी अग्निकन्या पार्वती गिरि। सम्लेईपदर में जन्मी पार्वतीगिरि ने महात्मा गांधी के 'भारत छोड़ो आंदोलन' से प्रेरित होकर बरगढ़ के एसडीओ कार्यालय पर कब्जा कर लिया। और एसडीओ को बांधकर लाने का आदेश पारित कर दिया। गांधीजी की अहिंसा की नीति का पालन करने वाली पार्वती गिरि का दुस्साहसिक कार्य अदम्य साहस का ज्वलंत प्रमाण था।

नौ अगस्त, 2020 को इन संग्राम स्थलियों को जोड़ने वाली समन्वय स्थली सोहेला में 11 मूर्तियों का अनावरण किया गया। सन 1942 में स्वतंत्रता आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाने वाले सेनानी जितेंद्र प्रधान के कर कमलों द्वारा इन 11 मूर्तियों का अनावरण किया गया। सोहेला में स्थापित %11मूर्तियां% दांडी यात्रा का एक कलात्मक संस्करण है। इसमें दिखाए गए हैं गांधीजी और उनके दस अनुयायी। ये दस %समावेशी% भारतवर्ष के प्रतीक हैं। वे समाज के प्रत्येक वर्ग और धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। 09 अगस्त, 2020 को संग्रामी पीठस्थलियों की समन्वय स्थली सोहेला में स्थापित अमूल्य भोई की कलाकृति %11 मूर्तियों% का अनावरण का उद्देश्य है स्वतंत्रता संग्राम के महान नायकों की चेतना और स्मृति को पुनर्जीवित करने का सबसे शक्तिशाली प्रयास।

23 मार्च 1930 से 6 अप्रैल 1930 के बीच आयोजित ऐतिहासिक दांडी यात्रा गांधी जी की एक सोची समझी रणनीति थी, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में निर्णायक साबित हुई। 1930 की दांडी यात्रा ने नमक अधिनियम 1882 के खिलाफ भारतीय जनता को लामबंद किया। ओड़िशा की धरती और ओड़िया जाति के लिए यह बहुत गर्व की बात है कि 1930 में गांधीजी के इस ऐतिहासिक मार्च में भाग लेने का विरल अवसर ओड़िया युवा मोतीवास दास को भी मिला था।

कोसल प्रांत की वीरता का इतिहास प्रथम स्वाधीनता संग्राम से भी पुराना है। संबलपुर मिट्टी के वीरवर सुरेंद्र साय ने भारत को पराधीनता की बेड़ियों से आजाद कराने का सपना 1857 के सिपाही विद्रोह से 30 साल पहले 1827 में ही देख लिया था। वीर सुरेंद्र साय ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष शुरू किया। उनका सशस्त्र संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का शुरुआती अन्यतम संघर्ष था। सन 1840 में वीर सुरेंद्र साय को कैद कर हजारीबाग जेल में डाल दिया गया परंतु सन 1857 में नाटकीय रूप से जेल के सीखचे तोड़कर उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ फिर से संबलपुर क्षेत्र में सशस्त्र संघर्ष शुरू कर दिया। उनके नेतृत्व को गोंड, बिंझाल और कई गांवों के जमींदारों और गौंतियों का समर्थन प्राप्त था।

घेंस के जमींदार माधो सिंह ने वीर सुरेंद्र साय के सशस्त्र संघर्ष को अटूट समर्थन और सहयोग दिया। माधो सिंह और उनके परिवार हटी सिंह, अरी सिंह, कुंजल सिंह, बैरी सिंह का वीरतापूर्ण संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अनूठी कहानी है। घेंस के वीर जवानों ने सिंघौदा घाटी को ब्रिटिश सेना के पहुंच से बाहर कर दिया था । वीर सुरेंद्र साय के गुरिल्ला युद्ध में इन वीरों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। माधो सिंह का पूरा परिवार ब्रिटिश आक्रोश का शिकार हुआ। हटी सिंह को उम्र कैद की सजा सुनाकर अंडमान भेज दिया गया। वह ओडिशा से अंडमान भेजे जाने वाले योद्धाओं में से अग्रगण्य थे।

बरगढ़ के पास बारपहाड़ के घने जंगलों में स्थित डेब्रीगढ़ सशस्त्र संग्राम का अन्यतम मूकसाक्षी है। लखनपुर के जमींदार बलभद्र सिंहदेव के पुत्र कमल सिंहदेव और उनके सहयोगियों के साहसी सशस्त्र संघर्ष ने ब्रिटिश सरकार को झकझोर कर रख दिया। वर्तमान बरगढ़ जिले के पाणिमोरा, समलेइपदर, डेब्रीगढ़, घेंस और ओड़िशा के सीमांत पर स्थित सिंघोड़ा घाटी स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख स्थल थी। ये स्थान ओडिशा के स्वतंत्रता सेनानियों के रग-रग में शौर्य को प्रतिबिंबित करता है। पश्चिम ओड़िशा के महान क्रांतिकारी एवं स्वतंत्रता सेनानियों को शत-शत नमन!!!

(लेखक, वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

चुनाव परिणाम की विश्वसनीयता पर जनता के मन में शंका

नृपेन्द्र अभिषेक नृप

लोकतंत्र का आधार चुनाव कराना ही नहीं, बल्कि चुनाव ऐसे कराना है कि इसकी निष्पक्षता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता पर जनता का भरोसा बना रहे। हाल में लोक सभा में नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी द्वारा चुनाव आयोग पर लगाए गए आरोपों ने देश की चुनावी प्रक्रिया पर बहस को नये मोड़ पर ला खड़ा किया है। यह केवल राजनीतिक विवाद नहीं, बल्कि लोकतंत्र की जड़ों को प्रभावित करने वाला गंभीर मसला है, जिसे न केवल राजनीतिक, बल्कि संवैधानिक और संस्थागत दृष्टि से भी परखना आवश्यक है।

राहुल ने अपने आरोपों में दावा किया है कि 2024 के आम चुनाव में बड़े पैमाने पर मतदाता सूचियों में फर्जी नाम जोड़े गए और असली मतदाताओं के नाम गलत तरीके से काटे गए। कांग्रेस पार्टी का कहना है कि महाराष्ट्र, हरियाणा, मध्य प्रदेश और अन्य राज्यों में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिली है। विपक्ष का आरोप है कि यह सब भारतीय जनता पार्टी को चुनावी लाभ देने के उद्देश्य से किया गया जिससे मतदाता सूची में हेरफेर कर परिणामों को प्रभावित किया जा सके। चुनाव आयोग ने इन आरोपों को खारिज करने की बजाय %हलफनामा' देने को कहा है।

कर्नाटक समेत तीन राज्यों के मुख्य निर्वाचन अधिकारियों को निर्देश दिया है कि वे संबंधित मतदाताओं के नाम दें जिन पर आरोप है कि उनके नाम फर्जी तरीके से जोड़े या काटे गए हैं। आयोग का कहना है कि इन दावों की सटीक जांच के लिए तथ्यों और ठोस प्रमाण की आवश्यकता है, महज आरोप पर्याप्त नहीं। आयोग का यह रु ख जहां नियम-सम्मत प्रतीत होता है, वहीं विपक्ष के आरोपों की गंभीरता को देखते हुए इनकी जांच में तत्परता और पारदर्शिता की मांग भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है। विवाद केवल आंकड़ों और आरोपों का खेल नहीं है, बल्कि लोकतंत्र के मूल %एक व्यक्ति, एक वोट' के सिद्धांत से भी जुड़ा है। यदि वाकई एक मतदाता के नाम पर कई वोट दर्ज हैं, तो यह सीधे-सीधे मतदान प्रक्रिया की पवित्रता का उल्लंघन है।

मतदाता सूची का सही और अद्यतन होना चुनाव की निष्पक्षता की पहली शर्त है। राहुल और विपक्षी दलों के आरोप फर्जी नाम जोड़ने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर भी सवाल उठाते हैं। उनका कहना है कि आयोग मतदाता सूची में गड़बड़ी दूर करने के लिए आवश्यक तकनीकी और प्रशासनिक उपायों को पूरी तरह लागू नहीं कर रहा है। उदाहरणत= आयोग द्वारा घर-घर जाकर मतदाता सत्यापन प्रक्रिया शुरू की गई परंतु इसमें भी पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी के आरोप लगते रहे हैं। कई बार फील्ड अधिकारियों पर राजनीतिक दबाव की आशंका जताई जाती है, जिससे गलत नाम सूची में बने रहते हैं, और सही नाम हटा दिए जाते हैं।

चुनावी पारदर्शिता पर चर्चा करते समय तकनीकी पहलुओं को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। विपक्षी दलों का आरोप है कि आयोग चुनाव प्रक्रिया की निगरानी में पारदर्शिता नहीं बरत रहा। जैसे कि मतदान के बाद वीवीपैट पर्चियों की गिनती सीमित प्रतिशत में करना, सीसीटीवी फुटेज सुरक्षित नहीं रखना और मतदान केंद्रों से ईवीएम की आवाजाही के दौरान पर्याप्त सुरक्षा उपायों का अभाव। ये सभी ऐसे बिंदु हैं, जो जनता के मन में शंका पैदा करते हैं। चुनाव परिणाम की विश्वसनीयता पर भी असर डालते हैं।

उल्लेखनीय है कि आयोग द्वारा मतदाता सूची संबंधी डेटा को ऐसे प्रारूप में जारी नहीं किया जाता जो आसानी से विश्लेषण के लिए उपयुक्त हो। इसके कारण राजनीतिक दलों और नागरिक संगठनों को जांच-पड़ताल में कठिनाई होती है। यदि डेटा पारदर्शी और उपयोगी प्रारूप में उपलब्ध हो, तो स्वतंत्र संस्थाएं और मीडिया भी चुनावी प्रक्रिया पर निगरानी रख सकते हैं, और गड़बड़ी पकड़ने में मदद कर सकते हैं। इस पूरे विवाद का सबसे संवेदनशील पहलू है संस्थागत विश्वास का क्षरण। चुनाव आयोग जैसी संस्था का भरोसा केवल उसकी संवैधानिक वैधता पर नहीं, बल्कि उसकी निष्पक्षता और पारदर्शिता पर टिका होता है। यदि जनता का विश्वास इससे उठने लगे तो लोकतंत्र की नींव ही हिल सकती है। यही कारण है कि राहुल के आरोपों को राजनीतिक बयानबाजी मान कर टालना पर्याप्त नहीं, बल्कि इनकी निष्पक्ष और स्वतंत्र जांच होना आवश्यक है।

इस मुद्दे का समाधान राजनीतिक बहस से नहीं, बल्कि ठोस प्रशासनिक और कानूनी कदमों से ही संभव है। चुनाव आयोग को चाहिए कि मतदाता सूचियों का थर्ड-पार्टी ऑडिट कराए, तकनीकी साधनों से डुप्लीकेट और फर्जी नामों की पहचान करे, और परिणामों को सार्वजनिक करे। मतदाता सत्यापन प्रक्रिया में जनता की भागीदारी भी बढ़ाई जाए। वीवीपैट गिनती के दायरे को बढ़ाना, सीसीटीवी फुटेज सुरक्षित रखना और ईवीएम की सुरक्षा को और मजबूत बनाना भी जरूरी है। लोकतंत्र की आत्मा तभी सुरक्षित रह सकती है, जब जनता का चुनाव प्रक्रिया में विश्वास रहे।

भारत को बेकार में दोष दे रहा 'टैरिफ किंग' अमेरिका

निरंजन

वैश्विक अर्थव्यवस्था का ताना-बाना जितना खुला और परस्पर जुड़ा हुआ दिखाई देता है, उतना ही उसमें छिपा है नीतियों और रणनीतियों का जाल। इन नीतियों में एक अहम और विवादास्पद औजार है, आयात शुल्क यानी टैरिफ, जिसे किसी देश की सरकार विदेशी वस्तुओं पर लगाती है। ये सदियों से व्यापार नीति का केंद्रीय हिस्सा रहा है। इसके माध?यम से कोई भी देश न केवल घरेलू उद्योगों की रक्षा करता है, बल्कि सरकारी राजस्व बढ़ाने का भी जरिया है। किंतु 21वीं सदी में, जब दुनिया ÷मुक्त व्यापार÷ और ÷ग्लोबलाइजेशन÷ की भाषा बोल रही है, तब टैरिफ मानो यह आर्थिक अधिकार के वर्चस्ववादी प्रतीक के रूप में देखाई देने लगता है।

वस्तुत= हाल ही में भारत और अमेरिका के बीच इस 'टैरिफ' को लेकर जो कूटनीतिक तनाव सामने दिखता है, उसने यह धारणा तोड़ी है कि 'टैरिफ' केवल आर्थिक उपकरण है। असल में, यह आज की दुनिया में रणनीतिक, राजनीतिक और वैचारिक टकराव का भी हिस्सा है। और जब खुद अमेरिका, जो वर्षों से मुक्त व्यापार का सबसे बड़ा समर्थक और प्रचारक रहा है, वह आज दुनिया में ÷टैरिफ किंग÷ बनकर सामने आता है।

अमेरिका आज अन्य देशों, विशेषकर भारत पर ÷अत्यधिक टैरिफ÷ लगाने का आरोप लगा रहा है, तब उसका यह आरोप सभी को इतिहास के पन्नों में झांकने का एक अवसर भी देता है। यदि हम ताजा आंकड़ों पर नजर डालें, तो स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका का औसत टैरिफ (18.4त्न) भारत (15.98त्न) से अधिक है। यह तथ्य अमेरिकी दावे को सीधे चुनौती देता है।इसका अर्थ है कि अमेरिका एक साल में लगभग 100 अरब डॉलर अतिरिक्त राजस्व टैरिफ से कमाता है और इसका बोझ अमेरिकी उपभोक्ता पर पड़ता है, जिससे वहाँ महँगाई बढ़ती है। यह महँगाई केवल उच्च वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए समस्या नहीं है, बल्कि मध्यम वर्ग और निम्न आय वर्ग पर भी असर डालती है। हालांकि यह उसके देश का मामला है, उसके हित और अहित अपने हैं किंतु भारत पर फिलहाल अमेरिकी प्रशासन का दबाव है, जिसके तहत भारत से अपेक्षा की जा रही है कि वह अमेरिकी डेयरी उत्पादों, कृषि उपज और आनुवंशिक रूप से परिवर्तित (जीएम) फसलों के लिए अपना बाजार खोल दे। स्वभाविक है ऐसे में भारत की केंद्र सरकार को अपने देश के नागरिकों के हित में निर्णय लेना है और वही आज लिया गया दिखता है।

भारत सरकार ने अमेरिकन ट्रम्प प्रशासन को दो टूक शब्दों में बता दिया है कि यह कदम उसके किसानों, डेयरी उद्योग और खाद्य सुरक्षा के हितों के खिलाफ है। भारत का यह रुख केवल भावनात्मक या संरक्षणवादी नहीं, बल्कि ठोस आर्थिक और सामाजिक आधार पर टिका हुआ है। देश के करोड़ों किसान और डेयरी क्षेत्र के लाखों छोटे उत्पादक अमेरिकी उत्पादों की बाढ़ में बुरी तरह प्रभावित हो सकते थे। यही कारण है कि भारत ने दबाव के बावजूद अपने हितों से आज कोई समझौता नहीं किया है।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि अमेरिका के टैरिफ का असर सिर्फ द्विपक्षीय व्यापार तक सीमित नहीं रहता। जब अमेरिका जो दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, उच्च शुल्क लगाता है, तो वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए चीन और अमेरिका के बीच व्यापार युद्ध ने इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं, मशीनरी और ऑटो पार्ट्स की वैश्विक कीमतें बढ़ा दीं। यूरोपीय संघ को अपनी टैरिफ नीति में बदलाव करने पड़े, ताकि अमेरिकी बाजार में प्रतिस्पर्धा बनी रहे। छोटे देशों को वैकल्पिक बाजार खोजने पड़े, जिससे वैश्विक व्यापार पैटर्न में बदलाव आया।

भारत ने भी इस चुनौती से निपटने के लिए आज रूस के साथ स्थानीय मुद्राओं रुपया और रूबल में व्यापार बढ़ाने का फैसला किया है। इससे न केवल अमेरिकी डॉलर पर निर्भरता कम होगी, बल्कि ऊर्जा, रक्षा और कृषि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी सहयोग बढ़ेगा। यह कदम आर्थिक स्वायत्तता की दिशा में एक मजबूत संकेत है।

कहना होगा कि भारत के पूर्व राजनयिक विकास स्वरूप ने इस मुद्दे पर जिस स्पष्टता और तथ्यों के साथ बात रखी है, वह कूटनीतिक विमर्श के लिए एक दिशा देती हुई दिखती है। उन्होंने कहा कि औसत टैरिफ दरों के आधार पर अमेरिका ÷टैरिफ किंग÷ है, न कि भारत। यह बात न केवल व्यापारिक, बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यहां यह भी एक तथ?य है कि अमेरिकी टैरिफ नीतियां केवल अमेरिका और भारत के बीच का मामला नहीं हैं। ये नीतियां वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला पर भी व्यापक असर डाल रही हैं। जब अमेरिका उच्च टैरिफ लगाता है, तो वस्तुओं की लागत बढ़ती है, और यह असर अन्य देशों में भी महसूस किया जाता है। वैश्विक व्यापार में जुड़े छोटे और मध्यम देशों को अपनी नीतियां बदलने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

अब प्रश्न यह है कि भारत के लिए आगे की राह क्या हो तब हमें यही कहना होगा कि केंद्र की मोदी सरकार को चाहिए कि वह अपने टैरिफ ढाँचे को पारदर्शी और तर्कसंगत बनाए रखे।वैकल्पिक बाजारों और मुद्रा तंत्र को मजबूत करे, ताकि डॉलर-निर्भरता घटे। डब्ल्यूटीओ जैसे मंचों पर अपने पक्ष को तथ्य और आंकड़ों के साथ लगातार प्रस्तुत करे। कृषि, डेयरी और छोटे उद्योगों की रक्षा को नीति का आधार बनाए रखे।

यहां यह भी कहना बनता है कि अमेरिका के टैरिफ दबाव का सामना करते हुए भारत ने जो रुख अपनाया, वह दुनिया के लिए एक संदेश है कि वैश्विक दबावों के बावजूद राष्ट्रीय हितों से समझौता नहीं किया जाना चाहिए। भारत ने न केवल दबाव को टाल दिया, बल्कि यह भी साबित किया कि वह अपने फैसले खुद लेने में सक्षम है। निश?चित ही इसका एक पक्ष यह भी है कि भारत का यह रुख भविष्य में अन्य विकासशील देशों के लिए भी प्रेरणा हो सकता है, जो कई बार अमेरिकी दबाव के सामने झुकते हुए दिखाई देते हैं, वे भी यह सीख सकते हैं कि वैश्विक दबाव के बावजूद अपनी नीतियों को अपने हितों के अनुरूप ढालना संभव है, सिर्फ इसके लिए जरूरी इतना भर है कि हम अमेरिका की वर्चस्ववादी सोच के सामने झुके नहीं।